[Jain*, Vol.7 (Iss.11SE): November 2019]
चित्रकला और उसके अंतः अनुशासनिक सम्बन्ध
Painting and Its Interdisciplinary Relation

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3585003

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH – GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository

Arts

आदिवासी अंग आरेखन कला - गुदना

डॉ. सुषमा जैन [1]

[1] प्राचार्य, शुभांकन फाईन आर्टस् कालेज, इन्दौर (म.प्र.)

मुख्य शब्द – आदिवासी, अंग, गुदना ।

Cite This Article: डॉ. सुषमा जैन. (2019). "आदिवासी अंग आरेखन कला - गुदना." *International Journal of Research - Granthaalayah*, 7(11SE), 10-13. https://doi.org/10.5281/zenodo.3585003.

वन्य जाति या जनजाति को आदिम, आदिवासी, वनवासी गिरिजन अनुसूचित जनजाति के नामों से जाना जाता है, इन्हें हम आदिम या आदिवासी इसलिए कहते हैं, क्योंकि ये भारत के सबसे प्राचीनतम निवासी माने जाते हैं । भारत में द्रविडों के आगमन से पूर्व यहाँ ये ही लोग निवास करते थे। आदिम संस्कृति आखिर है क्या ? आदिम संस्कृति को जानने, समझने का प्रयत्न संपूर्ण विश्व में हो रहा है, जितने पहलु हमने आदिम समूहों के बारे में जान लिए हैं, उतने ही और भी जानने के लिए शेष बचे हैं । भले ही हम आज कितने ही सभ्य और आधुनिक कहलाने लगे हैं, लेकिन यह सत्य है कि, हमारे समाज में आज भी आदिवासियों की संख्या दो तिहाई है[1] । अपनी निजी संस्कृति एवं जीवन पद्धति को अपनाये आदिम समूहों के इतिहास को देखें तो लोग समाज के समानान्तर आदिवासी समाज भी हर परिस्थिति में अपनी आदिम ऊर्जा और शक्ति के साथ जीवन जीता रहा ।

आदिवासी आज भी हजारों वर्ष पुरातन मान्यताओं, अवधारणाओं, परंपराओं और प्रथाओं को ज्यों का त्यों अपनाते आए हैं । किन्तु यह उनका अंधा अनुकरण मात्र नहीं है, अपितु सहज ज्ञान और समझदारी से ही जनजीवन की यात्रा होती है । वे बुद्धि का अधिक प्रयोग न करते हुए सहज वृत्तियों के आधार पर प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करते रहते है ।

आदिम समाज की परम्पराएँ एवं क्रियाएँ केवल भौतिक पक्षों से ही प्रभावित नहीं होती, उसमें अंधविश्वासों का भी योग रहता है । आदिम मनुष्यों में अदृश्य शक्तियों के प्रति भावात्मक प्रतिक्रियाएँ चलती रहती हैं । आदिम कला इसी समाज का प्रतिबिम्ब है[2] । आदिम मनुष्य प्राचीन काल से ही वस्त्र, बर्तन, धातु, पत्थर, काँच तथा भित्तियों पर चित्रांकन करता रहा है । आलेखन की मानसिकता प्रत्येक वस्तु को सौंदर्यपूर्ण बनाने की थी। इसी परंपरा में आदिवासी समाज में अंग आरेखन की प्रथा प्रचलित हुई ।

पुरातन काल में आभूषण स्वरूप फूल, पत्थर, रत्न, सीपियाँ, धातु, पंख, काष्ठ व अस्थियों आदि का उपयोग किया गया । इन्हीं अलंकारों का एक भिन्न रूप गोदना भी है, जिसने आदिवासी नारी को आभूषणों के समान सुन्दरता प्रदान की । इन अलंकरणों में मौलिकता नहीं है, वे पीढ़ी दर पीढ़ी उन्ही पारम्परिक प्रतीकों एवं

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3585003

आकारों में रचे जाते हैं । ग्रामवासियों के जीवन में भी यह कला अपने सौंदर्यमयी स्वरूप में अलंकरण की सजीव परम्परा है ।

आदिवासियों में अंग आरेखन 'खोनणं' के नाम से जाना जाता है । इस शब्द का अर्थ है 'खोदना' या 'गोदना', इसमें सुई की नोक से त्वचा को छेदकर या गोदकर उसमें सेम के पत्तों का रस, तेल और कालिख भरी जाती है । यह कला अपनी स्वतंत्र अभिव्यक्ति के कारण प्रयोगशील एवं रचनात्मक रही है । 'गुदना' मानवीय भावनाओं एवं सहज सौंदर्य की अभिव्यक्ति है, इसके विभिन्न नाम लोकगीतों एवं सम्बन्धित किवदन्तियों में सुने जा सकते हैं[3] ।

लगभग सभी आदिवासियों के आराध्य देव महादेव हैं तथा आदिवासियों की उत्पत्ति का श्रेय भी महादेव को ही दिया जाता है । गुदना के विषय में एक मिथक कथा प्रचलित है, जिसका उल्लेख 'वेरियर एल्विन' ने अपनी पुस्तक में किया है, जिसका भावार्थ इस प्रकार है - एक बार महादेव ने सभी देवी-देवताओं को भोज पर आमन्त्रित किया । आमंत्रण देवताओं की पत्नियों के लिए भी था । गोण्डों के देवता भी भोज में सम्मिलित हुए। सभी देव महादेव के साथ तथा देवियाँ पार्वती के साथ हास-परिहास एवं चर्चा में मग्न थे । भोजपूर्ण होने के पश्चात् जब सब अपने-अपने घर जाने लगे, तब गोण्डों के देवता अपनी पत्नी को लेने पहुँचे, परन्तु देवियों की उस भीड़ में वह अपनी पत्नी को पहचान न सके । इसी भ्रम में उन्होंने पार्वती के कन्धे पर हाथ रख उन्हें अपने साथ चलने को कहा । इस पर पार्वती कुपित हुई, किन्तु महादेव उनका क्रोध देख आनन्दित हुए, क्योंकि वे जान गए थे कि, गोण्डों के देव जानबूझकर ऐसा नहीं कर रहे, बल्कि वे गलतफहमी का शिकार हो गए हैं। वे समझ गए थे कि, गोण्ड देव त्रुटिवश ऐसा कर रहे हैं । उन्होंने पार्वती को समझाने का प्रयास किया, पर वे कहाँ मानने वाली थी । अंत में जब वे सत्य से अवगत हुई तो उन्होंने तय कर लिया कि, वे कोई न कोई ऐसा उपाय अवश्य करेंगी, जिससे कि भविष्य में कभी भी किसी को इस प्रकार का भ्रम न हो । इस प्रकार की दुविधा से बचने के लिए एवं प्रत्येक जाति को अलग-अलग पहचान प्रदान करने के उद्देश्य से कुछ आकृतियाँ बिम्ब, रूपायन निर्धारित किए तथा उन्हें देवियों के अंगों पर रचा गया । इन्हीं रुपायनों के माध्यम से सबको पृथक-पृथक पहचान मिल गई । यही गुदना का प्रथम एवं मूल रूप है । इस प्रकार अपनी जातीय पहचान को बनाए रखने के लिए स्त्रियों में गुदना गुदवाने की परम्परा प्रारंभ हुई, जिसका निर्वाह आज तक हो रहा है ।

एक और मिथक का उल्लेख वेरियर एल्विन ने अपनी पुस्तक ट्रायबल मिथ्स ऑफ उड़ीसा में किया है । मृत्यु के देवता यमराज है । किसी भी प्राणी की मृत्यु के उपरांत यमराज के लिए यह निर्धारित करना कठिन होता था कि, मृतक पुरुष है या स्त्री ? इस दुविधा से बचने के लिए एवं पुरुषों से अलग दिखने के लिए स्त्रियों के शरीर को रेखाकृतियों के माध्यम से अलंकृत किया जाए । इसी सोच के साथ उन्होंने अलंकरण के लिए अंग आरेखन को उपयुक्त समझा । स्त्रियों में गुदना के प्रचार के लिए यमराज के पुत्र एवं पुत्रवधू ने अपना योगदान दिया । यमराज ने अपनी पुत्रवधू के शरीर पर सुन्दर आकृतियों का आरेखन किया, जिससे वह अत्यंत रूपसी दिखाई देने लगी । उन्होंने अपने पुत्र को सारंगी बजाने की विद्या सिखाई । पुत्र की सारंगी की धुन से मोहित लोग एकत्रित होने लगे, तब पुत्रवधू ने स्त्रियों को अपना अलंकृत शरीर दिखाया । उस अलंकरण से स्त्रियाँ प्रभावित होने लगी तथा उनके मन में भी गुदने द्वारा अलंकरण की चाहत पैदा हुई । यमराज की पुत्रवधू ने बालोर या बिया के रस में बबूल के कांटे को डुबोकर, उसे त्वचा में चुभा-चुभा कर इच्छित आकृति बनाने की कला दिखाई। इस प्रकार यमराज के पुत्र एवं पुत्रवधू के प्रयासों से गुदना का प्रचलन आरंभ हुआ और उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त हो गया । इसके परिणाम स्वरूप स्त्रियों और पुरुषों में भेद करने की समस्या न रही[4] ।

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3585003

भिन्न-भिन्न आदिवासी जातियों में भिन्न-भिन्न प्रकार से गुदने गोदे जाते हैं । शरीर के अलग-अलग भागों पर गोदे जाने वाले गुदनों को भील जाति में विभिन्न नामों से पुकारा जाता है । आम्र वृक्ष भीलों का प्रिय वृक्ष है, इसे शरीर पर गुदवा कर वे इसे आम्बा अथवा अम्बाड़ा कहते हैं, इसी वृक्ष पर मोर भी बनाया जाये तो उसे आम्बा मोर कहते हैं । इसी प्रकार छीती, रांदणी, छितारा, कट्टाउरा, बीच्चा, बिच्चू (बिच्छु), चिरल्या, कुण्डी, मोकड़ी, घोड़ों, फुलड़ी, चौक (चिबुक), छोबड़ी के दाणे, गाल का दाणा, मस्तक का दाणा भी अंगलेखन के प्रकार हैं[5] ।

गोंड जाति की मान्यता है कि, गुदना स्त्रियों के सच्चे आभूषण हैं, जो मृत्यु जाने पर भी उसके साथ रहते हैं । देवताओं को प्रसन्न रखने और शरीर को स्वस्थ रखने के लिए गुदना गुदवाना जरूरी है। गौंड स्त्रियाँ गुदनों को सौभाग्य का प्रतीक मानती हैं, इसलिए वे शरीर के विभिन्न अंगों में गुदने के पारम्परिक रूपाकारों को ही गुदवाती हैं[6] ।

बैगा जनजाति संसार में सबसे अधिक गुदनाप्रिय है, ये स्त्रियाँ आठ साल की आयु से गुदना गुदवाना आरंभ करती हैं, विवाह के बाद तक यह प्रथा अनवरत रूप से जारी रहती है, सभी गुदनों के निश्चित अर्थ होते हैं तथा शरीर के अंग भी निश्चित होते हैं ।

कोरकू जाति में गुदना सामाजिक प्रतिष्ठा का चिन्ह माना जाता है, लड़की के मस्तक पर प्रथम गुदना होते ही उसका सम्मान घर एवं समाज में बढ़ जाता है । राजस्थान की सभी जातियों में अंग आरेखन प्रचलित है, किंतु मारवाड़ की बनजारा, भाट, नट, बाबरी, भील, रैबारी, गूजर, मीणा, बागरिया आदि जातियों में यह नारी देह का प्रमुख अलंकरण है । गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश का पश्चिमी क्षेत्र, उत्तरप्रदेश, बिहार तथा राजस्थान के ग्रामीण मेलों व उत्सवों में गोदना गुदे नारी सौंदर्य की झलक प्रमुखता से मिलती है[7] ।

लोककला के अंतर्गत अधिकतर अभिप्राय ज्यामितीय होते हैं, अतः अंग आलेखन के आकार भी ज्यामितीय रूपों से भिन्न नहीं होते, ये सभी आकार प्रायः सम एवं संतुलित ढंग से विभाजित रहते हैं । गोदनों में गोत्र अथवा जाति का चिन्ह भी गुदवाया जाता है । आराध्य देवों के साथ-साथ प्रतीक चिन्ह कलश, ओम, शंख, चक्र, त्रिशूल, पताका, सूर्य, चन्द्र तथा स्वनाम, पति का नाम, गुरुनाम वृक्ष, रेखा, बिन्दी आदि चिन्ह शरीर के विभिन्न अंगों पर गुदवाने की प्रथा आदिवासी समाज के साथ-साथ ग्रामीण कृषक तथा मजदूर वर्ग में भी लोकप्रिय है । वर्तमान में गुदना आकृतियाँ धीरे-धीरे परिवर्तित होती जा रही हैं । यह परिवर्तन मशीनों की सहायता से गुदना (टेटू) गोदने वाले व्यावसायिक कलाकारों द्वारा किए जाने वाले प्रयोगों की प्रमुख देन है, जो आज के आधुनिक वर्ग में भी लोकप्रिय होती जा रही है ।

संदर्भ सूची

[1] वसंत निरगुणे, जनजातीय और लोक संस्कृति, चौमासा, म.प्र. आदिवासी लोक कला परिषद् भोपाल प्रकाशन अंक-64 मार्च जून 2004) पृ. 6
[2] कला निबन्ध, अशोक, पृ. 210
[3] डॉ. कमला गर्ग, अंग-आलेखन कला, कला दीर्घा, उत्कर्ष प्रतिष्ठान लखनऊ प्रकाशन अक्टूबर-2002 अंक 5 पृ. 23
[4] एल्विन वेरियर, मिथ्स ऑफ मिडिल इंडिया (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 1941) पृ. 478

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3585003

[5] नेमिचंद जैन, भील भाषा साहित्य एवं संस्कृति इन्दौर, 1964, पृ. 124
[6] प्रो. नर्मदाप्रसाद गुप्त, लोकचित्रण का उद्‌भव विकास और प्रतीक, चौमासा, म.प्र. आदिवासी लोक कला परिषद् भोपाल प्रकाशन अंक-59 जुलाई-अक्टूबर 2002 पृ.15
[7] नीरज जयसिंह एवं बी.एल. शर्मा, राजस्थान की सांस्कृतिक परंपराएँ, जयपुर 1989, पृ. 105